यशपाल के उपन्यासों में यथार्थ की भावभूमि

बन्दना[1] एवं डॉ0 रोना सिंह[2]
[1]शोध छात्रा, जवाहरलाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज, बाराबंकी (उ0प्र0)
[2]शोध निर्देशिका, एसोसिएट प्रोफेसर, जवाहरलाल नेहरू स्मारक पी.जी. कॉलेज, बाराबंकी (उ0प्र0)

सारांश

यशपाल के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में एक वैचारिक ईमानदारी और कथनी व करनी की एक रूपता स्पष्ट दिखाई देती है। यदि किसी साहित्यकार के लेखन और व्यक्तिगत जीवन में यह समरूपता नहीं मिलती तो उसके लेखन या व्यक्तित्व को समीक्षकों द्वारा कटघरे में खड़ा किया जाता है ''साहित्यकार के व्यक्तित्व एवं कृतित्व में तालमेल बनाकर सम्यक रूप से किसी भी साहित्यकार का मूल्यांकन किया जाना चाहिए एक साहित्यकार क्या लिखता है, क्या सोचता है और अपनी निजी जिंदगी में व्यवहारिक रूप से क्या करता है, सामाजिक सरोकारों के प्रति लेखन के अतिरिक्त उसका कितना जुड़ाव है, या दोनो के बीच स्थिति क्या है, इन सबके अनुपात में ही उसे नम्बर प्रदान किए जाने चाहिए।'' इस दृष्टि से यशपाल का स्थान सर्वोच्च है। उनके जीवन और लेखन दोनों में पारदर्शिता और प्रतिबद्धता स्पष्ट दिखाई देती है। अन्याय के विरूद्ध प्रतिरोध की संस्कृति गढ़ने और समतामूलक समाज की स्थापना करने के लिए वे आजीवन कटिबद्ध रहे। अपने बचपन से लेकर आज तक का उनका इतिहास–चेतना विकास का इतिहास–जिस एक तथ्य की ओर पूरी शक्तिमता से हमारा ध्यान आकर्षित करता है, वह है उनके अन्तर्स में अवस्थित अन्याय के विरूद्ध दुश्मन की सी निर्ममता अन्याय चाहे वह जिस तरह का हो राजनीतिक शोषण का अन्याय हो या वर्गीय समाज में पूँजीपतियों द्वारा किया जाने वाला शोषण हो, अथवा धार्मिक पाखण्डों के प्रदर्शन से सर्वसाधारण को भुलावा देने का छलछद्म हो या फिर परम्परावाद और गलित रूढ़ियों से सम्बन्धित कोई बात हो इन सभी बुराइयों पर वे कसकर प्रहार करते हैं और कुरूपताओं की चादर तार–तार कर उसके भीतर दबी पड़ी मानवता का सौंदर्य उजागर कर दुनियां को उसकी झाँकी देना चाहते हैं उसका दर्शन कराना चाहते है. उसे भोगना और भोगने देना चाहते हैं। समझा जाता है कि यशपाल जी का एक अन्य अप्रकाशित उपन्यास 'नालन्दा' था जिसे उन्होंने बाद में नष्ट कर दिया था। इसमें मुसलमानी आक्रमण में हिन्दुओं की हार का वर्णन किया गया था।

दादा कामरेड (सन् 1941)

''दादा कामरेड, यशपाल का एकमात्र ऐसा उपन्यास है, जिसमें वे अपने निजी जीवन के घटना प्रसंगों और मुख्य पात्रों के रूप में कुछ वास्तविक व्यक्तियों को अंकित करते हैं। यहाँ एक ओर यदि वे समाज की मौजूदा परिस्थिति में क्रमागत आचार और नैतिक धारणा में वैषम्य की ओर संकेत करना चाहते हैं, वहीं वे उस ऐतिहासिक दौर को भी कथाबद्ध करना चाहते हैं, जब क्रांतिकारी संगठन संक्रांति और विघटन की स्थिति में था।''[1] अपने इस उपन्यास में उन्होंने 1929 से 1933 के बीच के राजनैतिक परिदृष्य को अंकित किया है। राजनैतिक दृष्टि से यह वह समय था, जब महात्मा गाँधी के अहिंसक आंदोलन से लोग निराश हो रहे थे और उत्तर भारत में सक्रिय क्रांतिकारी संगठन विघटन की प्रक्रिया में थे।

भगत सिंह और उनके साथियों के आज उपलब्ध दस्तावेजों से यह स्पष्ट है कि भगत सिंह और उनके अनेक साथी मार्क्सवाद और बोल्शेविक क्रांति की ओर आकर्षित थे। स्वयं यशपाल भी उन क्रांतिकारियों में से एक थे, जिनकी आस्था क्रांति के आंतकवादी तरीकों से उठ चुकी थी और जो व्यापक जनसहयोग के माध्यम से राजनैतिक परिवर्तन की दिशा में गहराई से सोच रहे थे। उपन्यास के 3 प्रमुख पात्रों हरीश, दादा और शैल के रूप में क्रमशः यशपाल चन्द्रशेखर आजाद और प्रकाशवती को पहचान लेना मुश्किल नहीं है। 'सिंहावलोकन' में यशपाल ने अपने और आजाद के वैचारिक मतभेद का उल्लेख विस्तारपूर्वक किया है। ''दादा साहसी हैं और दल की नीतियों के प्रति पूरी तरह समर्पित हैं लेकिन जहां दल में वे स्त्री की उपस्थिति को शंका की दृष्टि से देखते हैं, वहीं दल में नए आते परिवर्तन को वे बहुत आसानी से स्वीकार नहीं कर पाते। शैल के रूप में यशपाल एक

आत्मसजग और अपने संदर्भ में निर्णय लेने में पूरी तरह सक्षम युवती की परिकल्पना करते है।''[2] इस प्रकार हम कह सकते हैं कि– ''दादा कामरेड क्रांतिकारियों के प्रामाणिक जीवन वृत्त की झलक पेश करता है। यही नहीं यशपाल क्रांतिकारियों के कृत्यों और व्यक्तित्वों की गौरवगाथा नहीं गाते, वह क्रांतिकारियों की समझ को चुनौती देते हैं।''[3] ''दादा और कामरेड में यही अंतर था कि चन्द्रशेखर जहां कोरे आतंकवाद और शहादत का मार्ग अपनाए थे वहीं कामरेड आतंकवाद का मार्ग छोड़कर मजदूरों को संगठित करता है और उन्हें पूंजीपतियों के विरूद्ध लड़वाता है दो शब्दों में 'दादा कामरेड' क्रांतिकारी संगठनों की आतंकवाद में टूटती आस्था और मार्क्सवाद में दृढ़ होते हुए विश्वास की कथा है।

देशद्रोही (सन् 1943)

दूसरे विश्व युद्ध के आरंभिक तीन वर्षो 1939 से 1942 के बीच का कालखण्ड 'देशद्रोही' नामक उपन्यास में चिन्हित हुआ है। इसका प्रकाशन 1943 में हुआ था। इस उपन्यास को उन्होंने 'कल्पना के चाँद' को समर्पित किया है। इस आशय के साथ कि उसे ''पाने का प्रयत्न संतोष, साहस और सुख देता है।'' इसमें यशपाल तत्कालीन राजनैतिक अन्तर्धाराओं और विचारसरणियों को भी अंकित करते है कांग्रेस की बुर्जुआ और जनविरोधी नीतियों और कार्य पद्धति को वे व्यंग्य के कलात्मक उपयोग द्वारा उद्घाटित करते हैं। उपन्यास इस अर्थ में भी एक रचनात्मक छलाँग का उदाहरण माना जा सकता है कि इसमें यशपाल अफगानिस्तान और तत्कालीन सोवियत संघ का पर्याप्त अंतरंग और विश्वसनीय चित्र देने में सफल होते हैं, यद्यपि तब तक ये क्षेत्र उन्होने देखे नहीं थे।''[4] डॉ० पारसनाथ मिश्र के शब्दों में ''युद्धकालीन कम्युनिस्ट पार्टी के कार्यो को उचित और न्यय संगत बताने की दृष्टि से 'देशद्रोही' के कथानक का निर्माण किया गया है। कम्युनिस्ट पार्टी और डा० खन्ना जैसे उसके कार्यकर्ता की महानता और त्याग को प्रदर्शित करने के लिए लेखक ने कांग्रेस पार्टी और उसकी खोखली पूंजीवादी नीति की भी कटु आलोचना की है।''[5]

उपन्यास का नायक डॉ० भगवानदास खन्ना ब्रिटिश सेना में डाक्टर है, जिसका पश्चिमोत्तर सीमावर्ती कैम्प से अफरीदियों द्वारा अपहरण कर लिया जाता है। बजीरियों के बीच कष्टपूर्ण जीवन व्यतीत करने के बाद गजनी और रूस के सुखद, चिंतारहित जीवन की वह इसलिए उपेक्षा करता है कि स्वदेश लौटकर उसे जनशक्ति का नेतृत्व करना है, जनता के अधिकारों के लिए बलिदान देना है। चोरी छिपे स्वदेश लौटकर देश की जनता में प्रवेश कर वह कम्युनिस्ट नीतियों की बागडोर अपने हाथ में ले लेते है। राष्ट्रीय सम्पत्ति की रक्षा के लिए और जनशक्ति को बर्बाद होने से बचाने के लिए वह शिवनाथ जैसे साम्राज्यवादियों के समर्थकों द्वारा किए जाने वाले विध्वसंकारी कार्यो का विरोध करता है। मार्क्सवादी दर्शन से प्रभावित डॉ0 खन्ना अपनी पत्नी राज के विवाह से जरा भी असंतुष्ट नहीं होता बल्कि उसका समर्थन करता है। चंदा राज की बड़ी बहन है, रूस से लौटकर खन्ना कानपुर में जिसके घनिष्ट व आत्मीय संपर्क में आता है।

यह उपन्यास सन् 42 के संदर्भ में भारतीय कम्युनिस्टों की भूमिका का बचाव भी करता है। सोवियत संघ पर हिटलर के आक्रमण के बाद भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की युद्ध में ब्रिटिश सरकार से सहयोग की नीति के परिणाम स्वरूप कांग्रेस द्वारा उस पर देश द्रोह का लांछन लगाया गया था। घायल अवस्था में खन्ना डांडी में चंदा के साथ रानीखेत जाते हुए उसके पति राजाराम द्वारा पकड़ लिया जाता है। वह मारपीटकर अपनी पत्नी को वापस ले आता है और खन्ना को डांडी से निर्ममतापूर्वक उतारकर पत्थरों पर रख देता है। मूर्च्छित और तन्द्रावस्था में खन्ना पत्थरों पर टिके अपने सिर को चंदा की गोद में रखा अनुभव करता है और जीवन संग्राम में फिर लड़ने के लिए स्वास्थ्य लाभ करता हुआ अनुभव करता है उसी अचेता अवस्था में वह बड़बड़ाता है ''चाँद, मै देशद्रोही नहीं. .... ''चाँद, उनसे कहना ''हाँ साहस से......।''[6]

दिव्या (सन् 1945)

''भारतीय सामाजिक संरचना में स्त्री की यातना का संदर्भ यशपाल का मुख्य रचनात्मक सरोकार माना जा सकता है। दिव्या में वे ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में स्त्री की यातना के सामाजिक कारकों की खोज करते हैं। इतिहास को वे विश्लेषण की वस्तु मानते हैं, विश्वास की नहीं।'' इसमें बौद्धकालीन सामाजिक पृष्ठभूमि में दूसरी

शताब्दी ईसापूर्व सागल के जन समाज को केन्द्र में रखकर पृथुसेन, मारिश, रूद्रभीर और दिव्या के माध्यम से यशपाल ने तत्कालीन सामाजिक अन्तर्विरोधों को उद्घाटित किया है। वर्णाश्रम व्यवस्था और बौद्ध धर्म स्त्री को सम्मान, सुरक्षा व स्वतन्त्र व्यक्तित्व नहीं दे सकते हैं केवल भौतिकवादी तार्किक चरवाक मारिश ही उसे मानवीय गरिमा और सह व सम अस्तित्व से अनुभूतियों का आदान प्रदान कर सकता है।''[7] अपने आश्वासन का निष्कर्ष प्रस्तुत करते हुए वह कहता है– ''संतति की परम्परा के रूप में मानव को अमरता दे सकता है स्वर्ग और निर्वाण की मिथ्या कल्पनाओं की निस्सारता समझकर अंततः दिव्या संतान की परम्परा में ही अमरता के इस भौतिकवादी आश्वासन को स्वीकृति देती है। ''दिव्या' में मनुष्य–मनुष्य का सम्बन्ध सामाजिक दृष्टि से सहज रूप में दिखाया गया है। जीवन में सेक्स का महत्त्वपूर्ण स्थान है। सेक्स के कारण ही नर–नारी परस्पर आकर्षण और प्रेम में बंधते है। जाति और धर्म सेक्स के सामने व्यर्थ हो जाते हैं। पृथुसेन के प्रति दिव्या का समर्पण इसका स्पष्ट उदाहरण है। सामन्ती युग में शोषक वर्ग केवल साधनहीन मनुष्यों का ही शोषण नहीं करता था अपितु नारी के नारीत्व का भी शोषण किया करता था वह उसे कभी धार्मिक दृष्टि से कभी आर्थिक दृष्टि से पंगु बनाकर भोग्या बनाने के लिए बाध्य कर देता था।''[8] 'दिव्या' लिखकर यशपाल ने आज से लगभग 2000 वर्ष पूर्व बौद्धकालीन समाज में स्त्री की स्थिति को सहानुभूतिपूर्ण ढंग से प्रश्नांकित किया है। यशपाल की कहानियों और उपन्यासों में ''उनके पात्रों के वक्तव्यों से एक मार्क्सवादी विचारक की नारी मुक्ति की पक्षधरता की अनुगूंज स्पष्ट सुनाई देती है। वर्णाश्रम धर्म या बौद्ध धर्म की नारी विरोधी मान्यताएं सामन्ती समाज की दासों की दासी वृत्ति, धर्म दर्शन की पुरुषोचित मान्यताएं, पुरुष वर्चस्व की सामाजिक परम्परायें आदि सभी से वैचारिक स्तर पर संघर्ष करने वाला लेखक (यशपाल) हर दृष्टि से नारी पुरुष समानता का समर्थक है।''[9] निःसन्देह दिव्या उपन्यास यशपाल के स्त्री विमर्श का उत्कृष्ट उदाहरण है।

गीता पार्टी कामरेड (सन् 1946)

पार्टी कामरेड 'गीता' नामक एक कम्युनिस्ट युवती पर केन्द्रित उपन्यास है जिसे सन् 46 में बम्बई के नौ सेना विद्रोह की पृष्ठभूमि में लिखा गया है। पार्टी की एक समर्पित कार्यकर्ता के रूप में वह सड़कों पर पार्टी का अखबार बेचती है और पार्टी के लिए फंड इकट्ठा करती है। यह अनेक लोगों के संपर्क में आती है। इन्हीं में एक पद्मलाल भावरिया है जो पैसे के बल पर छोकरियों को फंसाता है। उसके साथी एक दिन उसे अखबार बेचती गीता को दिखाकर फंसाने की चुनौती देते है। गीता और भावरिया का लंबा संपर्क अंततः भावरिया को ही बदल देता है। यहाँ भी यशपाल कांग्रेस की राजनीति और उसके नेताओं के चरित्रिक अंतविरोधों को व्यंग्यात्मक शैली में उद्घाटित करते हैं। ''गीता (पार्टी कामरेड) में यशपाल का लक्ष्य कम्युनिस्ट कार्यकर्ताओं की सच्ची लगन निष्ठा, ईमानदारी और आजादी के लिए उनकी व्याकुलता दिखाकर पार्टी के ऊपर लगाये गए आरोपों का खण्डन करना है। कथा का विकास सूत्र आरम्भ से अंत तक इस लक्ष्यवादिता को ही लेकर चलता है।''[10]

मनुष्य के रूप (सन् 1949)

''मनुष्य के रूप' में यशपाल के अपने क्षेत्र कांगड़ा की एक पहाड़ी युवती सोमा के माध्यम से विभिन्न परिस्थितियों में एक ही मनुष्य के विविध रूपों की कहानी के साथ ही समाज के विभिन्न वर्ग रूपों की कहानी भी है। उपन्यास का कथानक पर्याप्त घटना बहुल है जिसमें समाज के विभिन्न वर्गों के व्यवहार का अध्ययन किया गया है।''[11] घटनाओं की विश्वसनीयता के जिस तर्क से यशपाल उपन्यास का कथानक विकसित करते है उसी में पात्रों की दुनियां खुलती और विकसित होती है। कथानक और पात्रों की इस जुगलबंदी के सहारे एक ओर यदि पात्रो की विचारधारा उनकी विश्वदृष्टि स्पष्ट होती है, वहीं नए रूप में उनका निर्माण भी होता है। बैरिस्टर सरोला की कोठी पर सोमा के आगे भद्र समाज की जो और जैसी दुनियां खुलती हैं उसके कारण ही वह वैसी नहीं रह जाती जैसी वह थी। उसका यह रूप परिवर्तन मुख्यतः जगदीश सरोला की बहन मनोरमा की संगत में होता है। ''सोमा के माध्यम से यशपाल, भारतीय समाज में स्त्री के संदर्भ में अनेक सवाल उठाते हैं। एक ओर यदि वह पहाड़ की अशिक्षा, कुसंस्कार और निर्धनता की मारी है, वहीं समूची सामाजिक व्यवस्था किसी भी रूप में उसे एक सामान्य और साधारण जिंदगी जीने की छूट नहीं देती। कांगड़ा से लेकर बम्बई तक उसकी इस समझ में कोई

अंतर नहीं पड़ता कि इस समाज में मर्द की आड़ के बिना स्त्री का जीना असंभव है।''[12] मनोरमा एक आधुनिक और सुशिक्षित युवती है। अनिजात परिवार में पल–पुसकर भी वह अपने भाई के मित्र और सहपाठी, निम्न मध्य वर्गीय कम्युनिस्ट युवक भूषण को प्रेम करती है उसकी कुंठाओं से उपजी उपेक्षा मनोरमा को आहत भी करती है। सुतली वाला के साथ अपने असफल और विडम्बनापूर्ण विवाह के सम्बन्ध में वह भूषण से स्वीकार करती है–''मैं खाई में गिरने के डर से भागी थी, कुंए में गिर पड़ी हूँ।''[13]

अमिता (सन् 1956)

'दिव्या' की भांति 'अमिता' उपन्यास भी ऐतिहासिक पृष्ठभूमि में कल्पना को आधार बनाकर लिखा गया उपन्यास है। सम्राट अशोक का कलिंग विजय के समय हुए भारी विनाश और रक्तपात से हृदय परिवर्तन होकर बौद्ध धर्म स्वीकारने के बहुश्रुत कथानक को परिवर्तित कर यशपाल ने इसे कलिंग की बालिका राजकुमारी अमिता को केन्द्र में रखकर इस उपन्यास का कथानक बुना है। गांधीवादी अहिंसा और हृदय परिवर्तन के सिद्धान्तों के प्रति गहरी असहमति के बावजूद लेखक अन्ततः उन्हीं का सहारा लेता है। अगिता की पृष्ठभूमि में तत्कालीन वैश्विक राजनीतिक परिदृश्य की महत्वपूर्ण घटनाऐं हैं। सन् 1952–53 में यशपाल ने वियेना में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय शांति सम्मेलन में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के एक सदस्य के रूप में भाग लिया था अपनी इस लंबी यूरोप यात्रा का वृतान्त उन्होनें 'लोहे की दीवार' के दोनों ओर में प्रस्तुत किया है। साम्राज्यवाद की विस्तारवादी नीति के विरोध में शांति समस्या पर लिखने का विचार इस यात्रा से लौटकर ही इनके मन में आया होगा। इसके बाद ही उन्होंने अमिता लिखना प्रारम्भ किया और पं० नेहरू की नीतियों से असंतुष्ट होने के बावजूद उनके शांति प्रयासों से वे संतुष्ट थे और पंचशील के सिद्धान्त, माओ का उदारवादी प्रगतिशील चितंन बगिया में सौ फूल खिलने दो का सिद्धान्त, खश्चौव का स्टालिनवाद से रूसी राजनीति को मुक्त कराने का प्रयास आदि अनेक घटनाएँ इसकी पृष्ठभूमि में समाहित है। बालिका अमिता और अशोक की मुठभेड़ इस उपन्यास का आकर्षक प्रसंग है जिसमें वह अपनी बालसुलभ निश्छलता से अशोक को निःशस्त्र करती है। बौद्ध धर्म के अन्तर्विरोधों को प्रायः यशपाल गाँधीवाद में घटाकर प्रस्तुत करते हैं। ''यशपाल ने अपने दीर्घकालीन संघर्षशील अनुभव के आधार पर विश्वशांति की कामना की है। यह सब यकायक किसी आदर्श की ओर मुड़ना नहीं है और न ही किसी पलायन की सूचना है।''[15]

झूठा सच (वतन और देश) सन् 1958 एवं झूठा सच (देश का भविष्य) सन् 1960

देश के विभाजन की विस्फोटक घटना को लेकर यशपाल ने अपना वृहदकाय उपन्यास 'झूठा सच' दो खण्डों वतन और देश तथा देश का भविष्य में प्रस्तुत किया है। 'झूठा सच' निर्विवाद रूप से यशपाल का सर्वश्रेष्ठ उपन्यास है। देश के विभाजन की त्रासदी और पुनर्वास के संघर्ष को यह महाकाव्यात्मक विस्तार से अंकित करता है। उपन्यास का मुख्य पात्र जयदेव पुरी शुरू में एक संघर्षशील पत्रकार है। लाहौर के दंगों में 'दौलू मामा' की हत्या पर लिखी गई अपनी टिप्पणी में वह जनता के प्रति नेताओं के उपयोग और फिर उदासीनता की नीति की तीखी आलोचना करता है। अपने समर्पण में इन दोनों पक्षों को ही आमने सामने रखकर यशपाल उपन्यास के शीर्षक की व्याख्या करते है। एक ओर जनसमुदाय है जो सदा झूठ से ठगा गया है और दूसरी ओर झूठ का व्यवसाय करने वाले नेता है जिनके द्वारा झूठ से छली जाकर भी जनता सच के प्रति अपनी निष्ठा और उसकी ओर बढ़ने का साहस नहीं छोड़ती। यह खण्ड मुख्य रूप से लाहौर पर केन्द्रित है। पंजाबी जीवन का लोकर, रीति रिवाज, आचार व्यवहार बोलियाँ, फेरीवालों की आवाजें गीत और...... गहरी स्थानीय रंगत वाली दुनियां बनाते हैं आंचलिकता के कैसे भी आग्रह से पूरी तरह मुक्त रहकर..... लाहौर की गलियाँ, बाजार अनारकली, मालरोड, ग्वालमंडी, मंजग, नीलागुंबद शाहलमी, भाटी दरवाजा, भोलापांधे की गली आदि लगता है जैसे पूरा लाहौर मूर्तरूप में सामने खड़ा है। यहां पहली बार लेखक पंजाब के जनजीवन में इतना तन्मय होकर वहा है।''[16]

'झूठा सच' के दूसरे खंड 'देश का भविष्य' में यशपाल कांग्रेस की जन विरोधी राजनीति और उसके दूरगामी परिणामों की ओर संकेत करते हुए अंततः देश का भविष्य जनता के हाथ में होने का विश्वास जताते हैं।

''पुरी उपन्यास का नायक और मुख्यपात्र है। वह अपनी सारी क्षमताओं और दुर्बलताओं के साथ अंकित है उसके आरम्भिक आदर्शो में धीरे–धीरे मध्यवर्गीय जीवन का यथार्थ और उसकी वास्तविकताएँ हावी होती जाती

है। परिस्थितियों से समझौता करके अंततः वह कांग्रेसी नेता बन जाता है। उसी के माध्यम से यशपाल जनता के व्यापक मोहभंग का एक प्रामाणिक भाष्य तैयार करते है।"[17]

यह उपन्यास भारतीय समाज में स्त्री की नियति का सवाल बहुत व्यापक ढंग से उठाता है। कनक, तारा और उर्मिला सहित अनेक वर्गों और सामाजिक स्तरों की स्त्रियों के माध्यम से वह स्त्री प्रश्नों पर विचार करता है। श्यामा तैंतीस वर्ष की अविवाहित इसाई युवती है। वह प्रेम में देह की भूमिका को नकारती नहीं। जिस डे से उसका सम्बन्ध है, वह पहले से ही विवाहित है। श्यामा क्लब और सोसायटी में उन्मुक्त भाव से कभी–कभार सिगरेट और शराब भी पी लेती है। वह तारा से कहती है– "सदा अपने आपको कुचलते रहना क्या यातना नहीं है? जो विवाहितों के लिए स्वाभाविक है वही अविवाहितों के लिए स्वाभाविक है। रोकने का यत्न करते ही हैं। रोके रखने के विश्वास में कुछ हो जाता है।" विवाह में अभिभावकों की भूमिका को यशपाल महत्व नहीं देते है। अभिभावकों द्वारा किए गए पलायन का दृश्य। ये चित्र 'झूठा सच' को एक 'क्लासिकी रचना का दर्जा देते विवाह को न मानते हुए शीलो अंततः रतन के पास पहुँचकर ही सुख व संतोष का अनुभव करती है। टूटने की पीड़ा के बावजूद यशपाल स्त्री के सम्बन्ध में विच्छेद का समर्थन भी नहीं करते, उसे अपरिहार्य भी ठहराते हैं। कनक पुरी को छोड़कर गिल के साथ नए सिरे से व्यवस्थित होने का प्रयास करती है और होती भी है। सोमनाथ से तारा का विवाह भी निरर्थक साबित होता है। अपनी ग्रन्थियों से मुक्त होकर वह अंततः नाथ से विवाह कर ही लेती है। 'विवाह' और 'परिवार' जैसी संस्थाओं की सार्थकता पर पुनर्विचार का जो प्रस्ताव आया, यशपाल उसकी अगुआई करने वाले लेखक हैं। 'झूठा सच' में ऐसे उदाहरण हैं जिनमें स्त्रियाँ कहीं विवाह के नाम पर, कहीं परिवार, धर्म और राजनीति के नाम पर, कहीं पितृसत्ता के वर्चस्व वाले भारतीय समाज में देह शुद्धता के मिथक के कारण सताई जाती है।"[18] इनमें बंती का उदाहरण सबसे करूण और त्रासद है जो अपनी ससुराल की चौखट पर सिर पटक–पटक कर मर जाती है और वे लोग, सब कुछ देखते रहने पर भी, इसलिए दरवाजा नहीं खोलते कि दंगों में परिवार के बिछुड़ जाने के बाद वह वापस लौटी है। जो औरत इस तरह जाने कहाँ–कहाँ रही और भटकी है, वह अब उसके किस काम की रह गई है? स्त्री विमर्श भी यशपाल के उपन्यासों का एक महत्वपूर्ण विमर्श है।

'झूठा सच' की एक और विशेषता है, जो प्रेमचन्द्र के अलावा अन्यत्र मुश्किल से मिलती है और वह है विवरणों की प्रामाणिकता और उनका वृहत् विशद व प्रामाणिक विवरण। यहाँ तक कि साम्प्रदायिक आग में जलता हुआ लाहौर उतना ही दृश्यात्मक यानी देखा हुआ सा लगता है, उतना ही गहरे रंग वाला जितना 'गान विद द विंड' नामक वृत्तचित्र में अमेरिकी गृहयुद्ध और उससे सम्बन्धित अग्निकांड के दृश्य जब यूनियन की सेनाएं सब कुछ जलाती हुई पीछे हट रही होती है। भारत से पाकिस्तान की ओर जाता मुसलमान शरणार्थियों का काफिला उतना ही जीवित, विविधवर्णी और आतंकप्रद है जितना 'द ओल्ड टेस्टामेंट' में मिश्र से यहूदियों के पलायन का दृश्य। ये चित्र 'झूठा सच' को एक 'क्लासिकी' रचना का दर्जा देते हैं।"[19]

बारह घंटे (सन् 1963)

'झूठा सच' और 'मेरी तेरी और उसकी बात' के बीच यशपाल ने 3 छोटे उपन्यास 'बारह घंटे, 'अप्सरा का शाप' और 'क्यों फँसे?" लिखे/रचनात्मकता की दृष्टि से ये साधारण रचनाएं हैं। 'बारह घंटे' का प्रकाशन सन् 1963 में हुआ। इसे आलोचकों ने लघु उपन्यास की संज्ञा दी है। 'बारह घंटे' में यशपाल की मुख्य चिंता पतिव्रत सम्बन्धी परम्परागत मूल्यों का विरोध करने की है। हिंदू धर्म में स्त्री को पति के जीवन काल में तो एकनिष्ठता की शिक्षा दी जाती है मृत्यु के बाद भी उसके लिए आजीवन अविवाहित रहने का विधान है। ईसाई धर्म मे यद्यपि पति की मृत्यु के बाद स्त्री का पुर्नविवाह वर्जित नहीं है, पर सम्भवतः वहां भी, कम से कम यशपाल के 'बारह घंटे' की साक्षी पर यह आदर्श स्थिति नहीं है। बारह घंटे में यशपाल ने बिनी नामक एक ईसाई युवती का चरित्र प्रस्तुत किया है जो अपने पति की मृत्यु के बाद आत्मकेन्द्रित, संसार से विरक्त और विक्षिप्त प्राय हो जाती है। वह अपने पति रोगी की प्यार भरी स्मृति में इतना डूबी रहती है कि संसार की दूसरी बातों का अपने शरीर का, खाने पहनने का बिलकुल ही ध्यान नहीं रख पाती। कई बार वह आत्महत्या कर डालने के लिए प्रस्तुत दीखती है। वहीं बिनी एक दिन अपने पति की कब्र पर फूल चढ़ाने के लिए जाती है और वहां फैन्टम नामक व्यक्ति, जो अपनी पत्नी की

मृत्यु से दुखी जीवन बिना रहा था, के सम्पर्क में आती है। दोनों दुखी आत्माएँ एक दूसरे की व्यथा का अनुभव करती है। वर्षा के कारण दोनों एक ही रिक्शे से घर लौटने को बाध्य होते है और अंततः बिनी अपनी बहन के घर न लौटकर फॅन्टम के साथ एक रेस्तरां में बैठ जाती है। दोनो व्यथित हृदय एक दूसरे की सहानुभूति और सहारे की आकाशीं हैं। अन्ततः यिनी रेस्तरां से फैन्टम के घर पहुंच जाती है और दोनों एक दूसरे के जीवन साथी हो जाते हैं। बिनी की बहन जेनी यथार्थ जानकर बिनी को उल्टा सीधा कहती है। उपन्यास की भूमिका में यशपाल ने लिखा है– ''पाठकों से अनुरोध है कि विनी को प्रेम अथवा दाम्पत्य निष्ठा निबाह न सकने का कलंक देने का निर्णय करते समय, बिनी के व्यवहार को केवल परम्परागत धारणाओं और संस्कारों से ही न देखें। उसके व्यवहार को नर–नारी के व्यक्तिगत जीवन की आवश्यकता और पूर्ति की समस्या के रूप में तर्क तथा अनुभूति के दृष्टिकोण से, मानव में व्याप्त प्रेम की प्राकृतिक अनिवार्य आवश्यकता के रूप में भी देखें।''[20] इस उपन्यास में यशपाल का लक्ष्य बुर्जुआ समाज की नैतिकता का खण्डन करना तथा उसके स्थान पर मार्क्सवादी नैतिकता की स्थापना करना है। ''दो मूल्य दृष्टियों के संघर्ष में वे निषेध, वर्जना और अस्वीकार वाली मूल्य दृष्टि का विरोध करके जीवन में प्रेम से आई पूर्णता को स्वीकार्य ठहराते है बिनी और फैंटम के नए सम्बन्ध का समर्थन लेखक के उसी सोच का विस्तार है जिसमें वे शुरू से ही आर्यसमाजी वर्जनाओं और निषेधवादी दृष्टि की आलोचना करते रहे हैं।''[21]

अप्सरा का शाप (सन् 1965)

''बारह घंटे' के दो वर्ष बाद, 1965 ई0 में यशपाल का 'अप्सरा शाप' नामक उपन्यास प्रकाशित हुआ। इसे कालिदास के अभिज्ञान शाकुन्तलम् का पुनर्पाठ कहा जा सकता है। जैसा और आगे चलकर रोमिला थापर और नवनीता सेन गुप्त जैसी लेखिकाओं ने भी किया। पुस्तक रूप में प्रकाशित होने के पूर्व यह 1964 ई0 में 'माया' में शंकुन्तला नाम से छपा था। इसमें यशपाल ने दुष्यन्त शकुन्तला की प्रणय कथा को अपनी रुचि और विचारधारा के अनुरूप प्रस्तुत करने का प्रयास किया है। यशपाल पति–पत्नी के बीच मधुर सम्बन्धों को मनोविज्ञान समझते हैं एवं पुरुष के अधिकारवादी भावना पर भी चोट करते है जब दुश्यन्त कम्य आश्रम में आकर नीति निर्णायक प्रजापति से निवेदन करते हैं। वे उन्हें अपनी अपनी पत्नी पर पति की नीति विहित अधिकार को भी मान्यता देने की कृपा करें तो प्रजापति उससे कहते हैं– ''आयुष्मान पति–पत्नी का सम्बन्ध तथा तत्सम्बन्धी अधिकार स्वत्व से नहीं, पारस्परिक प्रेम से तथा अनुरागजन अनुभूति से होते हैं। नर–नारी के प्रेम में प्राकृतिक न्याय यही हैं, पति अनुराग से रक्षा तथा आश्रय देकर अधिकार प्राप्त करता है, स्वत्व से नहीं। निर्दयता, निरादर तथा स्वत्व का अहंकार प्रेम के नहीं विरोध के भाव हैं। ऐसे भाव और व्यवहार प्रेम भावना तथा पति–पत्नी सम्बन्ध को समाप्त कर देते हैं। पुरूष पत्नी के प्रति निर्दयता से स्वत्व का व्यवहार करने पर प्रेमी एवं पति नहीं रहता, शत्रु और अपराधी बन जाता है।''[22] इस उपन्यास में यशपाल पितृसत्ता की निरंकुशता के माध्यम से स्त्री के 'स्त्री' होने के विरूद्ध उसके स्त्री बताये जाने की वास्तविकता को उद्घाटित करते हैं। पतिव्रता स्त्री स्त्री नहीं सिर्फ पतिव्रता होती है। सारी लांछना और अपमान सहकर भी शकुन्तला दुष्यन्त का प्रतिवाद नहीं करती।

क्यों फंसे ? (सन् 1968)

यशपाल का अंतिम लघु उपन्यास है 'क्यों फंसे? जो 1968 ई० में प्रकाशित हुआ। इसमें यौन सम्बन्धों में पजेशन की प्रवृत्ति के विरोध को अपनी केन्द्रीय अंतर्वस्तु बनाने के कारण पर्याप्त विवादास्पद रहा है। धर्मयुग में इसके न छपने का मूल कारण भी वस्तुतः यही था। प्रकाशकीय विज्ञप्ति के रूप में पुस्तक के फ्लैप पर मुद्रित पंक्तियों में उपन्यास के केन्द्रीय विषय का संकेत इस प्रकार दिया गया था– ''विवाह का प्रयोजन अधिक से अधिक सन्तान लाभ और नारी की सुरक्षा ही रहा है। एक समय सभी धर्मो में सन्तति प्रयोजन के बिना रति–कर्म अनाचार माना जाता था।' आज सन्ततिनिरोध राष्ट्रीय ही नहीं मानवीय कर्तव्य और धर्म बन गया है। सभी समाज और देश आत्मरक्षा के लिए रतिकर्म को स्वाभाविक प्रवृत्ति मानकर उसे निष्फल और निरापद बना देने का अभियान चला रहे हैं। यशपाल ने वस्तुतः इसी विचारधारा के चारों ओर अपने रचना संसार का ताना–बाना बुना है। उपन्यास के प्रमुख पात्र भास्कर के मन में अट्ठाइस वर्ष की उम्र में भी विवाह और गृहस्थी का कोई स्वप्न या उत्सुकता नहीं

है। 'स्वप्न था अपनी दृष्टि से कमनीय, संतोषजनक युवती की मैत्री और संगति के अवसर का लेखक मोती के रूप में, जो अपने दाम्पत्य जीवन से असन्तुष्ट युक्ती है, उसे ऐसी संगिनी प्रदान भी कर देता है।

(11) मेरी तेरी और उसकी बात (सन् 1974)

यशपाल का अंतिम और महत्वाकांक्षी उपन्यास 'मेरी तेरी और उसकी बात पूर्वी उत्तर प्रदेश में सन् 42 के भारत छोड़ो आन्दोलन की पृष्ठ भूमि पर है। इस आंदोलन की पृष्ठभूमि में यशपाल अनेक परिवारों की दो पीढ़ियों के सोच में आए अंतर को रेखांकित करते हैं। रतन लाल सेठ, मास्टर मथुरा प्रसाद और वकील कोहली आदि के माध्यम से यशपाल लखनऊ की एक गली और प्रकारान्तर से पूरे समाज में राजनैतिक चेतना की समूची पीड़ा को अंकित करते हैं। अमर और नरेन्द्र जैसे किशोर इन यड़ों की बातें सुनते हैं और उन प्रभावों को आत्मसात करने की कोशिश करते हैं। लाला लाजपतराय की शहादत के विरोध में लखनऊ में आयोजित विशाल हड़ताल को देखते रजा और अमर स्कूल से निकल जाते हैं। अमर, नरेन्द्र और रजा जैसे जैसे आगे बढ़ते हैं अपनी समझ और रूचि के हिसाब से उनके विचार और आदर्श भी बनते चलते हैं। इनमें नरेन्द्र कम्युनिस्ट विचारधारा से प्रभावित होता है, रजा रायवादी हो जाता है और अगर की परिणति एक कांग्रेसी समाजवादी के रूप में होती है। महात्मा गांधी और कांग्रेस से अनेक मतभेदों के बीच वह कहीं न कहीं उनसे जुड़ा भी रहता है। उषा की बीमारी के दौरान अमर उसके निकट संपर्क में आता है और उसे क्रांति और समाजवाद के संबंध में अनेक पुस्तके पढ़ने को देता है। 'मेरी तेरी और उसकी बात' में यशपाल तत्कालीन राजनीतिक परिदृश्य को गहरी अंतदृष्टि से अंकित करते हैं। कांग्रेस का आंदोलन गांधी और नेहरू की छत्रछाया में चल रहा था। अपने सारे समाजवादी सोच के बावजूद नेहरू गांधी का विरोध करने की स्थिति में नहीं थे। एक ओर नाथ शास्त्री जैसे कांग्रेसी समाजवादी हैं जो गांधी जी के जनसंघर्ष और जन जागरण को महत्व देने पर भी उसे भी सब कुछ मानने को तैयार नहीं है दूसरी ओर हरिभैया जैसे ईमानदार कांग्रेसी हैं जो अपना घर परिवार छोड़कर सिर्फ बीस रूपया महीना लेकर कांग्रेस का पूर्ण कालिक काम करते हैं। यशपाल महात्मा गांधी के सम्बन्ध में अपने दृष्टिकोण में कैसे भी परिवर्तन या पुनर्विचार की आवश्यकता नहीं देखते सोवियत संघ और भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी की गांधी संबंधी परिवर्तित और संशोधित दृष्टि की चिंता लिए बिना वे अपनी 'गांधीवाद की शव परीक्षा' और 'सेवाग्राम में दर्शन वाले विचारों पर कायम रहते हैं।

यशपाल के राजनीतिक उपन्यासों में यह सबसे अधिक कलात्मक उपन्यास कहा जा सकता है। इसका संगठन भी नए ढंग का है। कथा मोड सर्वत्र सहज किन्तु अकल्पित रूप में उभरते है। व्यवहारिक और सीधी सादी चलती भाषा में मार्मिकता धनात्मक प्रभावों में होती है।

उपन्यास भले ही यशपाल की केन्द्रीय विधा रही हो किन्तु उनके लेखन की शुरूआत कहानियों से ही हुई है उनकी कहानियां अपने समय की राजनीति से उतनी आक्रांत नहीं है जितने उनके उपन्यास है। सन् 1939 में 'पिंजरे की उड़ान' से लेकर 1968 में प्रकाशित 'भूख के तीन दिन' तक यशपाल की कहानियों के 16 संग्रह प्रकाशित हुए, जिनमें संकलित कहानियों की कुल संख्या 201 है। उनके मरणोपरान्त 'लैम्पशेड' नाम से एक संग्रह सन् 1977 में प्रकाशित हुआ। लेकिन इसमें मुख्यतः आखिरी दौर की उनकी कमजोर कहानियां है, जिन्हें संभवतः यशपाल ने अपने जीवन काल में कभी प्रकाशन योग्य नहीं समझा। ''यशपाल की आरंभिक कहानियाँ भावुकता और रोमानियत के विरुद्ध जीवन के प्रति एक यथार्थ और वस्तुनिष्ठ दृष्टिकोण पर बल देती है। सामाजिक परिवर्तन की दिशा में अपने विचारों का वे बहुत संयत और समझदारी भरा उपयोग करते दिखाई देते हैं।''

इनके कहानी संग्रहों का संक्षिप्त परिचय इस प्रकार है–

(1) पिंजरे की उड़ान : पिंजरे की उड़ान सन् 1939 ई0 में प्रकाशित यशपाल का प्रथम कहानी संग्रह है जिसमें 20 कहानियां है जो यशपाल ने 6 वर्ष डेढ़ माह कारावास में रहते हुए लिखी थी। इस संग्रह में मकील नीरस, रसिक, हिंसा, समाज सेवा, प्रेम का सार, पहाड़ की स्मृति, पीर का मजार, दुखी–दुखी, भावुक, मृत्युंजय, शर्त? तीसरी चिता, प्रायश्चित, हृदय, परायी, मजहब, कर्मफल, दर्पण, परलोक और दुख कहानियाँ संग्रहीत है।

जिनमें से अधिकांश कहानियाँ समस्या प्रधान इस संग्रह की कहानियों में नारी जीवन की विविध समस्याओं, कलाकारों की भावुकता, सामाजिक विषमताओं अंधविश्वासों, पहाड़ी जीवन और प्राकृतिक सौदर्य को कहानियों का विषय बनाया है। 'प्रेम का सार' तीसरी दुनिया, दुखी दुखी, प्रायश्चित, परायी, दर्पण जैसी कहानियाँ नारी उत्पीड़न, नारी शोषण और समाज के नारी विषयक मूल्यबोध को प्रकट करती है पीर का मजार परलोक, मजहब कर्मफल आदि कहानियाँ धार्मिक अंधविश्वासों और जड़ मान्यताओं पर प्रहार की दृष्टि से लिखी गई है। मक्रील और नीरस रसिक में कलाकारों की थोथी भावुकता को अनावृत्त किया गया है। पहाड़ की स्मृति में पहाड़िन की विरहदशा से उद्भूत प्रतिक्रियाओं का चित्रण भावुक और हिंसा कहानियाँ चिंतन प्रधान है।

(2) वो दुनिया : वो दुनिया यशपाल का सन् 1941 में प्रकाशित दूसरा कहानी संग्रह है जिसमें बारह कहानियाँ संग्रहीत हैं, जिनका क्रम इस प्रकार है– सन्यासी, दो मुंह की बात, बड़े दिन का उपहार, दूसरी नाक, मोटरवाली कोयले वाली, तूफान का दैत्य, कुत्ते की पूँछ, शिकायत, गुडबाई दर्द दिल, जहां हसद नहीं, नयी दुनियां और वो दुनियां। पहले संग्रह की अपेक्षा इस संग्रह की कहानियों में चिंतन की प्रधानता है। सामाजिक वैषम्य, प्रेम एवं काम, और मजदूर वर्ग की समस्यायें इन कहानियों के जरिये उद्घाटित हुई है। दो मुंह की बात, दूसरी नाक, मोटरवाली कोयले वाली, जहां हसद नहीं है जैसी कहानियाँ नारी शोषण को उद्घाटित करती है, सन्यासी वो दुनिया में चिंतन पक्ष प्रधान है। तूफान का दैत्य अंधश्रद्धा पर कुठाराघात करती है। शिकायत और बड़े दिन का उपहार भाव–प्रधान कहानियाँ है। इस संग्रह की भूमिका में यशपाल ने लिखा है–यह दुनियां विषमता से मर गई है। इस दुनियां का वैषम्य उस दुनिया में न होना चाहिए। ''इस दुनियां की कटुता से ही उस दुनिया की चाह उठती है। इसलिए दिल पुकार उठता है वो दुनिया।'' इस संग्रह का प्रतिपाद्य विषमता रहित समाज की स्थापना ही है।

(3) तर्क का तूफान : 'तर्क का तूफान' यशपाल का सन् 1943 ई0 में प्रकाशित सोलह कहानियों का संग्रह है जिसमें, निर्वासिता, अपनी करनी, तर्क का तूफान, मेरी जीत, जन सेवक, उतरा नशा, डायन, सोमा का साहस, होली नहीं खेलता, कानून, जादू के चावल, औरत, भाषा, परदा, राजा और तर्क का फल संग्रहीत है। लेखक का विचार है– ''जो विचार अपनी परिस्थितियों से बिछुड़ गये हैं अर्थात जिन विचारों और नैतिकता को जन्म देने वाली परिस्थितियां बदल गई हैं, वे विचार शरीर त्याग चुके जीवों की भांति है। उन व्यक्तियों की स्मृति चाहे जितनी सुखद हो, अभिमान का कारण हो, वे समाज के लिए उपादेय नहीं हो सकते। विचारों के विकास की इस प्रक्रिया का आधार समाज का चिन्तन और तर्क ही है।'' इन कहानियों के जरिये 'तर्क का तूफान' खड़ा कर लेखक सामाजिक परिवर्तन करना चाहता है। लेखक की प्रतिबद्धता इसमें और निखर आई है। "निर्वासिता, तर्क का तूफान, मेरी जीत, डायन, सीमा का साहस, जादू के चावल, औरत, होली नहीं खेलता आदि कहानियों में अनमेल विवाह, प्रेम एवं काम विषयक मूल्य–बोध और नारी पराधीनता का चित्रण है। 'अपनी–अपनी करनी, तर्क का फल धार्मिक अंध विश्वासों पर प्रहार की दृष्टि से लिखी गई है। 'राजा' कहानी में ऐतिहासिक परिदृश्य में शोषण की प्रक्रिया प्रकट करते हुए मार्क्सवादी जीवन दृष्टि व्यक्त की गई है।''

(4) ज्ञान दान : 1944 ई0 में प्रकाशित तेरह कहानियों के इस संग्रह में ज्ञानदान एक राज. गण्डेरी, कुछ समझ न सका, दुःख का अधिकार, पराया सुख, 80/100 या सांई सच्चे, जबरदस्ती, हलाल का टुकड़ा, मनुष्य, बदनाम, अपनी चीज प्रस्तुत संग्रह की भूमिका में लेखक ने ज्ञान की प्रकृति को अनिश्चित और पविर्तनशील माना है। उनका कहना है– ''आगे बढ़ सकने में ही ज्ञान की सार्थकता और हेतु है। ज्ञान आगे बढ़कर विकास का परिवर्तन स्वीकार करें और जीवन के क्षेत्र को व्यापक बनाये, यही ज्ञान की सफलता है, परन्तु मनुष्य के और उसके समाज के ज्ञान से उत्पन्न उसके विश्वास और धारणाएँ ही उसके ज्ञान पर सीमाएं और बंधन लगा देती है।'' लेखक की अवधारणा है कि जिज्ञासा ज्ञान का उद्गम स्रोत है जिससे वह विश्वास और धारणा के वजनी पत्थरों को लांघता है इसीलिए लेखक की मान्यता है कि ''मनुष्य को यदि जीवित रहना है तो जीवन की व्यापकता का मार्ग बंद करने वाले विश्वासों और धारणाओं के तालों को 'क्यों' की कुंजी से खोलते रहना आवश्यक है। इसी में उसका कल्याण है, मनुष्यत्व की सार्थकता है।''

(5) अभिशप्त : 1944 ई0 में प्रकाशित इस कहानी संग्रह में यशपाल की दास धर्म, अभिशप्त, काला आदमी, समाधि की धूल, रोटी का मोल, छलिया नारी, चार आने, मूक गयी, आदमी का बच्चा पुलिस की दफा, रिजक, भगवान किसके?, नमक हलाल, पुनिया की होली, हवा खोर और शम्बूक सोलह कहानियां है। इन कहानियों में मानव–सम्बन्धों के उस स्वरूप का विश्लेषण है जो अभिशप्त है। लेखक की मान्यता है कि ''कर्मफल के अभिशाप में हमारा विश्वास परिस्थितियों से संघर्ष करने के उत्साह को निर्जीव कर हमें सजीव मृतक बनाये हैं।'' इन कहानियों में प्राचीन व आधुनिक समाज की विषमताओं, अंध श्रद्धाओं और जड़ मान्यताओं पर तीव्र प्रहार किए गए हैं। दास प्रथा का प्रतिकार, सामाजिक वैषम्य, कला की उपयोगिता, कानून की निर्ममता, जाति और वर्ण व्यवस्था का विरोध, आस्तिकता का विरोध, नारी सम्बन्धी विविध समस्याओं का चित्रण सफलतापूर्वक किया गया है।

(6) भस्मावृत्त चिनगारी : 1946 ई0 में प्रकाशित इस संग्रह की पन्द्रह कहानियों का क्रम इस प्रकार है– भस्मावृत्त चिनगारी, गुलाम की वीरता, महादान गवाही वफादारी की सनद, वानहिण्डबर्ग, भाग्य का चक्र, पुरुष भगवान देवी का वरदान इस टोपी को सलाम, सत्य का मूल्य सआदत, साग, पहाड़ का छल और घोड़े की हाय। इन कहानियों के जरिए लेखक ने कला विषयक धारणाओं को स्पष्ट किया है। वे कला के लिए कला के विरोधी थे इसलिए वे कला की समाज सापेक्ष भूमिका पर बल देते है भस्मावृत्त चिनगारी में जीवन और कला के सम्बन्धों पर आधारित यशपाल की श्रेष्ठ कहानियां संग्रहीत है। इस संग्रह की कहानियों में विषय वैविध्य दिखाई देता है। कला और जीवन देश प्रेम देश द्रोह, भिक्षुक और परिग्रह जैसे नए विषयों से कथ्य को विकसित किया है।

(7) फूलों का कुर्ता: 1949 ई0 में प्रकाशित इस कहानी संग्रह में यशपाल की आठ कहानियां नर–नारी के यौन संबंधों पर आधारित है। संग्रह की भूमिका में कहानीकार ने बदलती परिस्थितियों, परम्परागत संस्कारों, पुरातन नैतिकता के प्रतिभावों और लज्जा की रक्षा के लिए मानव के प्रयत्नों की रिक्तता को दो छोटी–छोटी कहानियों के जरिए व्यक्त किया है। इन दो लघु कथाओं में लेखक परम्परागत नैतिकता के विपरीत नई नैतिकता गढ़ता दृष्टिगत होता है। 'फूलों का कुर्ता' के सन्दर्भ में लेखक कहता है, ''बदली स्थिति में भी परम्परागत संस्कार से ही नैतिकता और लज्जा की रक्षा करने के प्रयत्न में क्या से क्या हो जाता है। प्रगतिशील लेखकों की उधाड़ा–उधाड़ी बाते......। हम फूलों के कुरते के आँचल में शरण पाने का प्रयत्न कर उघडते चले जा रहे है और नया लेखक हमारे चेहरे से कुरता नीचे खींच देना चाहता है।''

(8) धर्म युद्ध : 1950 ई0 में प्रकाशित 'धर्मयुद्ध' नामक कथा संग्रह में यशपाल की 10 कहानियां धर्मयुद्ध' 'मनु की लगाम 'विश्वास की बात' 'जनगण मन अधिनायक है ''खतडुआ' 'मतिराम की बहादुरी 'चार सौ बीस (420)' 'आत्मिक प्रेम' 'मंगला और 'डाक्टर' संग्रहीत है। इसकी भूमिका में यशपाल ने लिखा है– ''यदि प्रगतिवादी व्यापक सामाजिक समस्या के क्षेत्र में पुरानी शोषक व्यवस्था से समाज की मुक्ति के प्रयत्न में सहायक होना चाहता है तो उसे साहित्यिक को तर्क संगत स्वतन्त्रता से शोषक–व्यवस्था पर आघात करने का अवसर देना होगा।'' सामाजिक परिवर्तन की इस प्रक्रिया को लेखक धर्मयुद्ध नाग की संज्ञा देते हैं संग्रह की सभी कहानियाँ लेखकीय प्रतिबद्धता की उदाहरण है।

(9) उत्तराधिकारी : 1961 ई० में प्रकाशित इस संग्रह में भी कहानियाँ है–उत्तराधिकारी, जाब्ते की कार्रवाई, अगर हो जाता, अंग्रेज का घुघरू, अमर, चन्दन महाशय, कुल–मर्यादा, डिप्टी साहब और जीत की हार इन कहानियों का सृजन पहाड़ी परिवेश में हुआ है। 'शीर्षक कथा' पुरुष के उत्तराधिकारी बनाने की पुरुष आकांक्षा को लेकर लिखी गई है। इस कहानी में पहाड़ी परिवेश, पंचायतों का महत्व ईश्वर विश्वास और नारी को हर्जाने के रूप में विक्रय करने आदि रिवाजों का वर्णन है। सरकारी कार्य की यांत्रिकता और अमानवीयता 'जाते की कार्रवाई' में नारी की यांत्रिकता 'अगर हो जाता' में पहाड़ी परिवेश के लोगों का अंधविश्वास अंग्रेज का घुंघरू में, जीवन की निरसरता 'अमर' में अवसरवादी नेताओं पर व्यंग्य चंदन महाशय में परदा प्रथा पर प्रहार कुल–मर्यादा' में किया गया है। डिप्टी साहब न्यायाधीशों और न्याय प्रक्रिया पर व्यंग्य है। जीत की हार कहानी साम्प्रदायिकता की पृष्ठभूमि में प्रेमकथा का भावपूर्ण चित्रण है।

(10) चित्र का शीर्षक : ''चित्र का शीर्षक' 1952 ई० में प्रकाशित तेरह कहानियों का संग्रह है। इसमें चित्र का शीर्षक, हाय राम!.. ये बच्चे!! आदमी या पैसा, प्रधानमंत्री से भेंट, मार का मोल, शहनशाह का न्याय, स्थायी नशा, एक सिगरेट, फूल की चोरी, अनुभव की पुस्तकः, पाँव तले की डाल साहू और चोर, और इसी सुराज के लिए? शीर्षक कहानियां प्रमुख है। ये कहानियां साम्प्रदायिकता, सामाजिक विषमता, पुरुष यौन लालसा, स्वराज्य नारी की सामाजिक स्थिति आदि विविध विषयों को कहानियों के माध्यम से सामने लाती है। यह यशपाल का एक प्रतिनिधि संग्रह है।

उनकी कहानियों का तीसरा दौर सन् 1955 से आरम्भ होकर अंत तक चलता है। इस प्रकार हम देखते है कि ''यशपाल की कहानियों की संवेदना बहु आयानी है। उनकी कहानियों में जहां एक ओर समाज की विकृ तियों का चित्रण है वहां दूसरी ओर सामाजिक संरचना से जुड़ी आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक स्थितियों का अंकन है।''

सन्दभ सूची

- मधुरेश, यशपाल रचना संचयन–साहित्य अकादेमी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, भूमिका, पृ0–10
- विश्वम्भर नाथ उपाध्याय, आलेख दादा कामरेड, नई दिल्ली और सोच की पहल, क्रान्तिकारी यशपाल, लोकभारती, इलाहाबाद, 2007, पृ0–81
- मधुरेश, यशपाल रचना संचयन–साहित्य अकादेमी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, भूमिका, पृ0–11
- डॉ0 पारसनाथ मिश्र, मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972, पृ0–135
- यशपाल, देशद्रोही उद्धृत यशपाल रचनावली खण्ड–1, उपन्यास लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं0 2007, पृ0–358
- मधुरेश, यशपाल रचना संचयन–साहित्य अकादेमी दिल्ली, प्रथम संस्करण, 2006, भूमिका, पृ0–12
- यशपाल 'दिव्या' यशपाल रचनावली खण्ड–2 उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृ0–160
- डॉ0 पारसनाथ मिश्र, मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972, पृ0–141
- यशपाल 'दिव्या' यशपाल रचनावली खण्ड–2 उपन्यास, लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, पृ0–162
- डॉ0 प्रभा दीक्षित, यशपाल का नारी विमर्श : संदर्भ दिव्या वर्तमान साहित्य यशपाल विशेषांक अंक–10–12, 2003, कुंवरपाल सिंह, अलीगढ़, पृ0–160
- डॉ0 पारसनाथ मिश्र, मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972, पृ0–142
- यशपाल, मनुष्य के रूप, यशपाल रचनावली खण्ड–5, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0–152
- डॉ0 पारसनाथ मिश्र, मार्क्सवाद और उपन्यासकार यशपाल, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 1972, पृ0–144
- यशपाल, मनुष्य के रूप, यशपाल रचनावली खण्ड–5, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2007, पृ0–155
- प्रो0 रामवीर सिंह, अमिता का जीवन दर्शन, आलेख उद्धृत वर्तमान साहित्य, यशपाल विशेषांक दिस0, 2003, पृ0–404
- मधुरेश, यशपाल रचना संचयन भूमिका साहित्य अकादेमी, दिल्ली प्रथम संस्करण, 2006 भूमिका, पृ0–16
- मधुरेश, यशपाल रचना संचयन भूमिका साहित्य अकादेमी, दिल्ली प्रथम संस्करण, 2006 भूमिका, पृ0–15
- डॉ0 महेश्वर, शोध आलेख 'झूठा सच' सच का रूझान या रूमानी सच, मधुरेश, यशपाल रचना संचयन भूमिका साहित्य अकादेमी, दिल्ली प्रथम संस्करण, 2007 भूमिका, पृ0–139–140
- यशपाल 'बारह घंटे' उपन्याय भूमिका, यशपाल रचनावली खण्ड–5, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम सं0 2007, पृ0–231
- यशपाल, 'अप्सरा का शाप' यशपाल रचनावली खण्ड–2, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, प्रथम संस्करण, 2007 पृ0–417
- डॉ0 विवेकीराय, यशपाल 'मेरी तेरी उसकी बात' वर्तमान साहित्य यशपाल विशेषांक दिसम्बर, 2003, कुवरपाल सिंह, पृ0–108
- [1]यशपाल, यशपाल रचनावली खण्ड–8 ,यशपाल की कहानियाँ, तर्क की तूफान से भूमिका से, मधुरेश, लोकभारती इलाहाबाद, 200